RNI Reg. No.: UTTHIN/2021/83295

डाक पंजीकरण संख्याः यू.ए./नैनीताल–367/2023–2025

बात पहाड़ की

बात पहाड़ की
कृषि, संस्कृति, कला, योग, आयुर्वेद, शिक्षा, विज्ञान व समाचार

news.baatpahaadki.com

राष्ट्रीय हिन्दी साप्ताहिक

info@baatpahaadki.com

धारी (नैनीताल) | सोमवार 01 दिसम्बर 2025 से रविवार 07 दिसम्बर 2025 | वर्ष 05 | अंक 01 | पृष्ठ 4 | मूल्य 3.50 रुपये

एक अकेला थक जाएगा, मिल कर बोझ उठाना

नैन सिंह डंगवाल

धारी। पदमपुरी सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र में मूलभूत सुविधाओं, चिकित्सक व अन्य स्टाफ की मानकों के अनुरूप नियुक्ति की व्यवस्था में सरकारी कोताही, को लेकर पिछले कई दिनों से आगर क्षेत्र के लोग आंदोलनरत हैं और धरने में बैठे हैं। पदमपुरी का कलकार गधेरा, जहां ठंड से आदमी कलताई जाता है, सर्द मौसम जहां ठंडा चौबीसों घण्टे अपने चरम पर होता है, ऐसे समय पर इन दुरूह परिस्थितियों में खुद को संकट में डालते हुये आगर के युवाओं ने धरने पर बैठने का फैसला लिया है, तो कारण एक ही हो सकता है कि दर्द बड़ा है। पीड़ा असहनीय हो चुकी है, अनदेखी और चुनावी राजनीति के वायदों में आगर की करीब–करीब 3 पीढ़िया खप चुकी हैं। आगर की जनता ने परिस्थितियों को ही अपनी नियति मान लिया है। आगर की जनता धीरे–धीरे ही सही, यह समझने लगी है कि हमको ठगा गया है। अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिए आगर के भोले जनमानस को इस्तेमाल किया गया है।

जब से यह धरना आरंभ हुआ मेरी रोज इस पर बात होती है। जल्दी ही उपस्थिती भी रहेगी। इतना साफ लग रहा है कि आगर का गुस्सा उबल रहा है। दबी चिंगारियाँ सुलग रही हैं। हर तरफ गुस्सा है। लोगों को समझ आ रहा है कि पैलाग कह कर लोगों ने वोट तो लिया पर देखा ही नहीं कि जिस समाज की नुमाइन्दी वह कर रहे हैं? उसके वास्तविक हाल क्या हैं? कोई ये बताने वाला नहीं है कि आज भी हमको प्राथमिक उपचार के लिए हल्द्वानी ही क्यों जाना पड़ता है? अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा देने के लिए जमीन बेचकर भी शहरों में क्यों आना पड़ रहा है? क्यों पदमपुरी का यह सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र केवल रेफरल सेन्टर बन कर रह गया है? पिछले एक दशक में तो नेताओं ने मान लिया है कि आगर को केवल लूटा जाये, बाहर वालों से सेटिंग कर यहाँ की बची खुची जमीन भी बेच दी जाये, हमें और हमारी आज की पीढ़ी को सरकारी सुविधा के नाम पर नशा जरूर परोसा गया है। जीवन रक्षक दवाओं की आपूर्ति की जगह शराब की आपूर्ति में सरकार अधिक सजग और मुस्तैद है।

इस अस्पताल को जोड़ने वाली रोड का तो क्या कहना। शायद इसी रोड के गड्ढों को देखकर विधायक जी बोलते हों कि उनका काम बोलता है। जिसको इस रोड से भी विकास समझ नहीं आता या विधायक जी के विकास की आवाज नहीं सुनाई देती, वह धारी–कसियालेख रोड को देख ले और हो सके तो एकाद राउड इस 10 किलोमीटर की दूरी की यात्रा कर ले। उसे विकास ऐसा समझ आएगा कि फिर उसे विकास समझाना मुश्किल होगा। मुद्दों की सूची लम्बी है पर यह संघर्ष रचनात्मक परिणाम लाएगा यह उम्मीद है, बस एक आह्वान है कि "एक अकेला थक जाएगा, मिलकर बोझ उठाना"। धरने में शामिल सभी साथियों को सैल्यूट और सलाम।

लेखक सामाजिक कार्यकर्ता, विचारक एवं लेखक हैं।

'बात पहाड़ की' ई-पेपर पढ़ने के लिए इस QR कोड को स्कैन करें।

कॉमरेड राजा बहुगुणा होने का मतलब

भूपेन सिंह

"एक इंसान की जिंदगी में जब क्रांति होती है तभी वो कम्यूनिस्ट बनता है। इसके बाद ही वो पूरे समाज में क्रांति लाने की कोशिश करता है।" राजा भाई की कही ये बात आज भी मेरे दिल–दिमाग में कहीं अटकी पड़ी है। हम लोग अक्सर सवालों के साथ उनका इंतजार कर रहे होते। हम उनसे विचारधारा, कम्यूनिज्म और क्रांति से जुड़े तरह–तरह के सवाल करते। खुले राजनीतिक सवालों के अलावा हमारे बीच व्यक्तिगत जीवन से जुड़े प्रेम, संघर्ष और दुःख पर भी कॉमरेडाना बातचीत होती। दुनियाभर का साहित्य, आंदोलन और राजा बहुगुणा जैसे लोग हम नौजवानों की जिंदगी में खलबली मचा रहे थे। राजा भाई प्यार से हमें बातों में इंगेज करते। धैर्य से असुविधाजनक सवालों को सुनते। धीरे–धीरे हमारी अराजकता में एक 'रूमानी आदर्शवाद' चला आया था। हम जाति, धर्म, वर्ग और लिंग विभाजित समाज में इन पहचानों को मिटाकर न्याय आधारित समाज का सपना देखने लगे थे। सामाजिक बहसों और आंदोलनों की कतारों में हम भी नजर आने लगे थे।

मार्क्सवाद हमें सिखा रहा था कि इंसान की व्यक्तिगत यात्रा भी भौतिक स्थितियों से ही बाहर निकलती है। इस सिलसिले में देखूं तो राजा बहुगुणा उत्तराखण्ड में न्याय के लिए चलने वाले जन आंदोलनों का चमकता सितारा रहे हैं। राजशाही और अंग्रेजों से लड़ने वाले जुझारू लोगों की प्रतिरोध की परंपरा का वे हिस्सा रहे हैं। सत्तर के दशक के चिपको आंदोलन ने उनकी राजनीति को आकार दिया। उसकी गांधीवादी और मार्क्सवादी धारा में वे मार्क्सवाद के ज्यादा करीब पहुंचे। तब नक्सलवादी आंदोलन ने राजा बहुगुणा जैसे कई लोगों को उत्तराखण्ड के पहाड़ों में भी अपनी तरफ आकर्षित किया। बाद में अनगिनत छोटे–बड़े आंदोलनों के साथ ही नशा नहीं रोजगार दो और उत्तराखण्ड राज्य आंदोलन में राजा बहुगुणा एक जरूरी हस्तक्षेप की तरह मौजूद रहे।

आज इक्कीसवीं सदी में जब दुनियाभर में निरंकुशता भेस बदलकर लोकतंत्रों के मुखौटे में सामने आ रही है। हिंदुस्तान का नाम ऐसे देशों मे सबसे आगे है। हिटलर और मुसोलिनी की वैचारिक संतानें जब पूरे समाज में नफरत घोल रही हैं। तब राजा बहुगुणा जैसे लोग गोबर में ज्ञान तलाशने से मना कर देते हैं और समाज में फैलाई जा रही नफरत के खिलाफ खड़ा होने का साहस करते हैं। तब राजा बहुगुणा सिर्फ एक व्यक्ति नहीं एक विचार का प्रतीक बन जाता है। ये प्रतीक पूरे समाज के न्यायपसंद लोगों को एकजुट करने का अभियान है। इसलिए तरह–तरह के जिहादों के आवि कारक गोबर ज्ञानी अगर सबसे ज्यादा किसी से डरते हैं तो इसी अभियान से डरते हैं। इसलिए इस परंपरा के खिलाफ तरह–तरह की अफवाह फैलाने और दुष्प्रचार करने से नहीं चूकते।

राजा बहुगुणा ने पिछले पचास साल में मुझ जैसे हजारों लोगों की जिंदगी को छुआ। ऐसे लोग भले ही उन जैसे कम्यूनिस्ट न बने हों लेकिन राजा भाई ने सबके ऊपर गहरा असर छोड़ा। उनसे जुड़ी अनगिनत यादें मेरे पास हैं। फिलहाल मैं किसी एक घटना के बारे में नहीं लिखना चाहता। हमारे बीच असहमतियों के लिए भी जगह थी। मुझे लगता है कि उनके जीवन, काम और वक्त को जरूर डाक्यूमेंट किया जाना चाहिए। मैं हर तरह के सहयोग के लिए तैयार रहूंगा। जिससे नई पीढ़ी को पता चले कि बेईमानी, चापलूसी, जोड़–तोड़, चालाकी और दलाली कर जीवन चलाने के अलावा भी जीने के तरीके होते हैं।

कुछ लोग सवाल उठा सकते है कि राजा बहुगुणा के पूरा जीवन लगाने के बाद भी राजनीति तो बदली नहीं। क्रांति तो हुई नहीं। समाज तो निरंतर पतन की दिशा में बढ़ता जा रहा है। निजाम विनाश को विकास, अन्याय को न्याय और लफ्फाजी को तर्क बताने पर अड़ा है। तब राजा भाई के संघर्ष का क्या मतलब बनता है? इस बारे में मैं सिर्फ इतना कहना चाहता हूं कि हो सकता है न्याय की लड़ाई कई पीढ़ियों तक चले। हार–जीत होती रहेंगी। लेकिन उत्तराखण्ड में राजा बहुगुणा की परंपरा साहस, तर्क और जिद के साथ झूठ और अन्याय का मुकाबला करती रहेगी। यथास्थिति को कबूल नहीं करेगी। समाज में ऐसा होना भी छोटा–मोटा हासिल नहीं है।

राजा भाई की मौत की खबर से कुछ देर सन्न रहने के बाद मैं हजारों किलोमीटर दूर से हल्द्वानी में राजा भाई की अंतिम यात्रा पर नजर रखे हुए था। किसी ब्राह्मणवादी कर्मकांड के लिए वहां कोई जगह नहीं थी। सैकड़ों लोग जिस तरह जाति, मजहब, लिंग की सीमाओं को तोड़कर गाते हुए, नारे लगाते हुए, बेईमानों को चुनौती देते हुए लाल झंडा लहराते हुए उन्हें विदाई देने पहुंचे थे। उसे देखकर मुझे लगा कि सबसे गहरे दुःख और सबसे बुरे बक्त में भी उम्मीद सबसे बड़ा हथियार होती है। अलविदा राजा भाई! भले ही समाज में क्रांति न आयी हो आप बहुत सारे लोगों की जिंदगी में क्रांति ले आये थे!

हम सम्पूर्ण भवन निर्माण कार्य, मेंटिनेंश, विद्युत वायरिंग, पेंटिंग और सजावट का कार्य करते हैं।

Mobile No.: +91 9761034033
Email: aclnainital@gmail.com

ACL GOODS AND SERVICES
Registered Office:
Main Market Kasiyalekh, Block Dhari, District Nainital
Uttarakhand, PIN- 263137

पहाड़ की बात को
जन-जन तक पहुँचाने वाले
अपने समाचार पत्र
"बात पहाड़ की"
को आर्थिक
सहयोग करें।
आप अपने सामर्थ के अनुसार किसी भी पेमैंट ऐप से उक्त QR कोड स्कैन कर हमें आर्थिक सहयोग कर सकते हैं।

संपादकीय

बात पहाड़ की

'पर्यटन' और 'तीर्थाटन' के भेद को जानना बहुत जरूरी

गणेश सिंह बिष्ट

हमारे देश के आर्थिक विकास में 'पर्यटन' एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है और इसका क्षेत्र देश में रोजगार के दृष्टिकोण से बड़ा ही व्यापक है। पर्वतीय राज्यों में 'पर्यटन विकास' से स्वरोजगार के नये आयाम विकसित हुए हैं। कुछ ऐसी ही स्थिति हमारे राज्य उत्तराखण्ड की भी है। राज्य से बाहर के लोग उत्तराखण्ड में घूमना और बसना चाहते हैं, यह बहुत अच्छी बात है, किन्तु सभी घुमक्कड़ियों के लिए 'पर्यटन' और 'तीर्थाटन' के भेद को जानना बहुत जरूरी है। आज तीर्थ स्थलों को पर्यटन से जोड़ दिया जा रहा है और लगभग सभी तीर्थस्थल व्यावसायिक केन्द्र बनते जा रहे हैं। यह बात समझने की है कि हर स्थान एक जैसी ही मनसा से घूमने–फिरने के लिए उचित नहीं हो सकता। प्रत्येक स्थान की अपनी एक विशेष पहचान और मान्यता होती है, जिसके आधार पर ही उस स्थान विशेष पर लोगों के घूमने–फिरने की मर्यादा तय होती चली जाती है। प्राचीनकाल से चली आ रही इन मर्यादाओं को बनाये रखना और परम्परागत मान्यताओं का आस्थापूर्वक अनुपालन करना प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य होना चाहिए और आने वाली पीढ़ियों को भी इन परम्पराओं को एक धरोहर के रूप में संजो कर रखने की प्रेरणा देनी चाहिए। अब प्रत्येक स्थान को व्यावसायिक केन्द्र ही बनाते चले गये तो वहां के स्थानीय लोगों की 'आस्था' पानी भरती नजर आयेगी। प्राचीनकाल से ही उत्तराखण्ड राज्य को 'देवभूमि' के नाम से जाना जाता रहा है। देशभर के कई सारे पवित्र तीर्थस्थल उत्तराखण्ड राज्य में स्थित हैं, जो लोगों की आस्था के केन्द्र हैं। विश्वप्रसिद्ध हरिद्वार समेत उत्तराखण्ड के चारों धाम; गंगोत्री, यमुनोत्री, केदारनाथ एवं बद्रीनाथ उत्तराखण्ड राज्य में ही मौजूद हैं। प्रत्येक वर्ष इन तीर्थस्थलों में देशभर से बड़ी संख्या में तीर्थयात्री दर्शनार्थ आते हैं और आदिकालीन मान्यता के अनुसार मोक्ष प्राप्त करते हैं। प्रत्येक तीर्थस्थल की अपनी एक पृथक परम्परा और दैवीय विधि–विधान रहे हैं, जिन्हें स्थानीय समुदाय द्वारा संरक्षित किया गया है। देशभर से दर्शनार्थ आने वाले श्रद्धालु भी पूर्ववत चली आ रही परम्पराओं और विधियों का ही अनुपालन करते रहे हैं। आज 'पर्यटन विकास' की होड़ में सभी तीर्थ स्थानों को पर्यटन स्थलों में परिवर्तित किया जाना हमारी सांस्कृतिक धरोहर के अस्तित्व पर सवालिया निशान है। पर्यटन स्थलों का व्यवसायीकरण किया जाना तो समझ में आता है, किन्तु तीर्थ स्थलों पर विचरण करने के लिए कुछ तो फर्क होना ही चाहिए।

हमारे तीर्थ स्थल मुक्ति का मार्ग रहे हैं, लोग यहां सच्ची आस्था लिए भगवान के दर्शनार्थ और मोक्ष प्राप्ति के लिए आते हैं। मोक्ष का तात्पर्य आत्मज्ञान या परमज्ञान की प्राप्ति से है, जो कि तीर्थ स्थलों के दर्शन से ही संभव होता है। हमें अपने तीर्थ स्थलों की मान्यता, मर्यादा, शुद्धता और पवित्रता का विशेष ख्याल रखना ही होगा। आधुनिकता की होड़ में यदि लोग हनीमून के लिए भी तीर्थ स्थलों में जाने लगें तो फिर वहां के स्थानीय लोगों की आस्था और मान्यताओं का क्या मान रहेगा? आजकल अविवाहित प्रेमी जोड़ों में भी घूमने–फिरने का नया उन्माद देखने को मिलता है, जो कि पर्यटन स्थलों तक तो मान्य हो सकता है, किन्तु तीर्थ स्थलों में अविवाहित जोड़ों का भला क्या काम हो सकता है? यदि वे अपनी मर्यादाओं और उस स्थान की पवित्रता का ख्याल रखें और सच्ची श्रद्धा से दर्शन करें तो एक बार के लिए इसे ठीक ठहराया जा सकता है, किन्तु इस बात का क्या आधार होगा?

पर्यटन स्थलों में आगन्तुकों द्वारा अपनी मन–मर्जी से समय व्यतीत किया जा सकता है, अपनी इच्छानुसार भोजन का चुनाव किया सकता है, और अपनी सुविधा के अनुसार अपने ठहरने के स्थान का चुनाव किया जा सकता है। पर्यटन स्थल में यात्रीगण 'जैसा दाम वैसी सेवा' का लाभ लेने के लिए स्वतंत्र हैं, किन्तु तीर्थ स्थल में सभी यात्रियों के लिए मानक निर्धारित हों, यह अतिआवश्यक है। सरकारों को भी 'तीर्थयात्री' और 'पर्यटक' में फर्क स्पष्ट करना चाहिए। तीर्थ यात्रा के कुछ मानक और पात्रता अवश्य ही निर्धारित किये जाने चाहिए, ताकि प्रत्येक वर्ष तीर्थस्थलों में बढ़ने वाली अनावश्यक भीड़ को नियंत्रित किया जा सके और यात्रा–प्रबंधन भी सुचारू रूप से किया जा सके। माना कि सरकार को पर्यटन से अच्छी आय प्राप्त होती है, पर्यटन स्थलों में रोजगार के अवसर खुल जाने से स्थानीय अर्थव्यवस्था चलायमान रहती है, किन्तु तीर्थस्थलों को पर्यटन स्थलों की तर्ज में विकसित किया जाना कहां तक सही साबित होगा, इस पर विचार किया जाना आवश्यक है। 'पर्यटन स्थल' बाजार हो सकते हैं किन्तु 'तीर्थस्थल' हमारी ईश्वर भक्ति और आस्था के केन्द्र रहे हैं, जिन्हें यथावत पवित्र ही रहना चाहिए।

सह सम्पादक

संविधान दिवस पर डॉ. अंबेडकर की चेतावनी को याद करें

इंद्रेश मैखुरी

विगत सप्ताह 26 नवम्बर को संविधान दिवस था। इस दिन यानि 26 नवम्बर 1949 को संविधान सभा ने भारत के संविधान को अंगीकृत किया था। इस मौके पर और संविधान सभा की बहसों में अन्य मौकों पर संविधान निर्माता डॉ. अंबेडकर ने जो कहा, उसे आज के परिपेक्ष्य में, जबकि न्याय, संविधान और लोकतंत्र पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं, याद करना समीचीन होगा।

संविधान सभा में 25 नवम्बर 1949 को अपने भाषण में डॉ. अंबेडकर ने कहा था कि "हमें अपने राजनीतिक लोकतंत्र को सामाजिक लोकतंत्र भी बनाना चाहिए। राजनीतिक लोकतंत्र ज्यादा नहीं चल सकता यदि उसके आधार में सामाजिक लोकतंत्र न हो। सामाजिक लोकतंत्र का क्या अर्थ है? यह जीवन की शैली है जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व को जीवन के सिद्धांत के तौर पर स्वीकार करती है।"

लोकतंत्र के लिए स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के महत्व को रेखांकित करते हुए वे कहते हैं– "बिना समानता के स्वतंत्रता, अधिकांश लोगों के ऊपर थोड़े से लोगों का प्रभुत्व हो जाएगा। बिना स्वतंत्रता के समानता, व्यक्तिगत पहलकदमी को खत्म कर देगी... बिना बंधुत्व के समानता और स्वतंत्रता सहज चीजें नहीं बनेंगी, बल्कि इन्हें लागू करने के लिए पुलिसिया डंडे की आवश्यकता होगी।"

स्वांतत्रता, समानता और बंधुत्व को रेखांकित करने के बाद डॉ. अंबेडकर इस मामले में संविधान लागू करने के साथ पेश आने वाली चुनौतियों का जिक्र करते हैं। वे कहते हैं "26 जनवरी 1950 से हम अंतरविरोधों के एक नए युग में प्रवेश करने जा रहे हैं। राजनीति में हमारे पास समानता होगी, सामाजिक व आर्थिक जीवन में असमानता। राजनीति में हम 'एक व्यक्ति, एक वोट' और 'एक वोट, एक मूल्य' के सिद्धांत को मानेंगे। अपनी सामाजिक और आर्थिक संरचनाओं के कारण हम सामाजिक और आर्थिक जीवन में एक व्यक्ति, एक मूल्य के सिद्धांत को नकारना जारी रखेंगे। अंतरविरोधों भरे इस जीवन के साथ हम कब तक जिएंगे? हम कब तक अपने सामाजिक और आर्थिक जीवन में समानता को नकारते रहेंगे? हम लंबे समय तक अगर नकारते रहेंगे तो ऐसा हम अपने राजनीतिक लोकतंत्र को खतरे में डाल कर ही करेंगे।"

भारत को राष्ट्र बनाने के लिए क्या करना होगा, इस पर भी वे 25 नवम्बर 1949 के भाषण में स्पष्ट करते हैं। वर्तमान समय में राष्ट्रवाद के नाम पर वितंडा खड़ा करने वालों को भी डॉ. अंबेडकर के इन शब्दों को सुनना चाहिए। वे कहते हैं– " मेरी राय यह है कि यह मानते हुए कि हम एक राष्ट्र हैं, हम एक भ्रम पाल रहे हैं। हजारों जातियों में बंटे लोग एक राष्ट्र कैसे हो सकते हैं? हम जितनी जल्दी इस बात को समझ लेंगे, हमारे लिए उतना ही बढ़िया होगा, क्यूंकि सिर्फ तभी हम एक राष्ट्र बनाने की जरूरत महसूस कर सकेंगे और इस लक्ष्य को हासिल करने के रास्तों और माध्यमों पर गंभीरता से सोच पाएंगे। इस लक्ष्य का अहसास होना काफी कठिन होने जा रहा है... जातियां राष्ट्र विरोधी हैं। प्रथमतया इसलिए कि वे सामाजिक जीवन में अलगाव पैदा करती हैं। वे इसलिए भी राष्ट्र विरोधी हैं क्यूंकि वे जाति के प्रति दूसरी जाति में ईर्ष्या और विद्वेष पैदा करती हैं, पर अगर हमें असल में एक राष्ट्र बनना है तो इन सारी मुश्किलों से पार पाना होगा।"

आज भारत में लोकतंत्र और संविधान के प्रति गंभीर अवज्ञा का भाव उनके भीतर है, जो लोकतंत्र के जरिये संविधान की शपथ लेकर सत्ता में पहुंचे हैं। 25 नवम्बर 1949 के भाषण में डॉ. अंबेडकर ने इस खतरे की ओर इशारा किया था। भारत के प्राचीन गणतंत्रों के क्षरण का उल्लेख करते हुए डॉ. अंबेडकर ने कहा था– "जो लोकतांत्रिक व्यवस्था भारत ने खो दी। क्या वह उसे दूसरी बार भी खो देगा मैं नहीं जानता। भारत जैसे देश में यह काफी हद तक मुमकिन हैं। जहां लंबे अरसे तक प्रयोग न किए जाने के कारण लोकतंत्र को एकदम नयी चीज समझा जाता है। यहां यह खतरा है कि लोकतंत्र, तानाशाही का मार्ग प्रशस्त कर दे। यह इसे नए जन्में लोकतंत्र के लिए काफी हद तक मुमकिन है कि वह अपना रूप कायम रखे पर हकीकत में तानाशाही को जगह दे दे।" आज के स्वरूप में लोकतंत्र और हकीकत में तानाशाही ही है, जिसे हम आज साक्षात देख रहे हैं।

राजनीति का आज भक्तिकाल चल रहा है। नेता को आराध्य के स्थान पर बैठा दिया गया है। इस खतरे की ओर भी संविधान सभा के उक्त भाषण में डॉ. अंबेडकर ने चेताया था। वे स्पष्ट कहते हैं– "हो सकता है कि धर्म में भक्ति आत्मा की मुक्ति का मार्ग हो। पर राजनीति में भक्ति या नायक पूजा, निश्चित ही पतन का मार्ग है जिसका परिणाम तानाशाही होगा।" देश में लोकतंत्र, संविधान और न्याय के हक में जरूरी है कि जिस मार्ग को डॉ. अंबेडकर पतन का मार्ग कह रहे हैं, उस मार्ग से देश को उबारा जाये और अंबेडकर के सूत्र "स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व" को कायम किया जाये।

क्यों भारत को ज्यादा महिला जजों की जरूरत है?

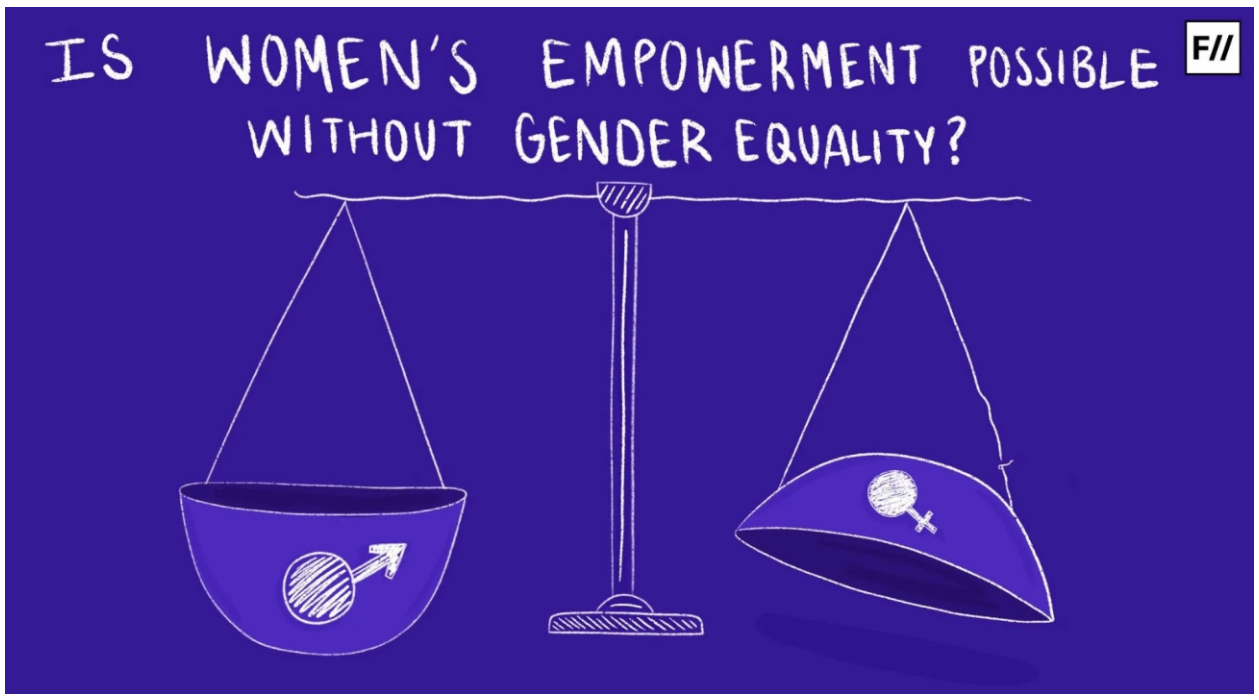

मासूम कमर

भारतीय न्यायपालिका ने पिछले सौ सालों में महिलाओं की भागीदारी में कई अहम कदम देखे हैं। इसकी शुरुआत साल 1924 में हुई, जब कॉर्नेलिया सोराबजी भारत की पहली महिला वकील बनीं। लेकिन आज भी, सुप्रीम कोर्ट और हाई कोर्ट जैसे न्यायालयों में महिलाओं की संख्या बहुत कम है। यह कमी हमारे न्याय तंत्र में मौजूद ढांचे की असमानता और जटिल प्रक्रियाओं को दिखाती है। संविधान में बराबरी, न्याय और समावेशिता जैसे मूल्यों को सच्चे तौर पर लागू करने के लिए, जरूरी है कि उच्च न्यायपालिका में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बढ़े। मार्च में एक कार्यक्रम के दौरान न्यायमूर्ति इंदिरा बनर्जी ने कहा था कि महिलाओं की नियुक्ति को किसी 'असाधारण घटना' की तरह मनाने के बजाय, इसे एक सामान्य बात माना जाना चाहिए। अगर नियुक्तियों की प्रक्रिया ट्रैन्सपैरन्ट यानी स्पष्ट, योग्यता पर आधारित और लैंगिक दृष्टि से संवेदनशील बनाई जाए, तो भारत की न्यायपालिका समाज के हर वर्ग को और बेहतर तरीके से प्रतिनिधित्व दे सकेगी और न्याय असल में सभी के लिए समान हो पाएगा।

न्यायपालिका में महिलाओं की वर्तमान स्थिति

भारत की न्यायपालिका में महिलाओं की भागीदारी अब भी बहुत कम है। देश के उच्च न्यायालयों में महिला न्यायाधीशों की संख्या केवल 13.1 प्रतिशत है। कई राज्यों में स्थिति और भी कमजोर है। पांच उच्च न्यायालयों में एक भी महिला न्यायाधीश नहीं है। वहीं सात उच्च न्यायालयों में महिलाओं की संख्या 10 प्रतिशत से भी कम है। सबसे बेहतर स्थिति सिक्किम और तेलंगाना उच्च न्यायालयों की है, जहां महिला न्यायाधीशों की संख्या लगभग 33.3 प्रतिशत है। लेकिन उत्तराखण्ड, मेघालय और त्रिपुरा जैसे राज्यों में आज भी कोई महिला न्यायाधीश नहीं है। भारत के सबसे बड़े इलाहाबाद उच्च न्यायालय में कुल 109 न्यायाधीश हैं, जिनमें सिर्फ 6 महिलाएं हैं यानी कि केवल 5 प्रतिशत हिस्सेदारी महिलाओं की है। बात सुप्रीम कोर्ट की करें, तो फिलहाल केवल एक महिला न्यायाधीश हैं न्यायमूर्ति बी. वी. नागरत्ना। कुल 34 न्यायाधीशों में यह संख्या सिर्फ 2.9 प्रतिशत है।

साल 1950 से अब तक भारत के सर्वोच्च न्यायालय में केवल 11 महिला न्यायाधीश नियुक्त हुई हैं। यानी अब तक हुई 287 कुल नियुक्तियों में महिलाओं की हिस्सेदारी सिर्फ 3.8 प्रतिशत रही है। वहीं अब तक कोई भी महिला न्यायाधीश भारत के मुख्य न्यायाधीश यानी चीफ जस्टिस ऑफ इंडिया के पद पर नियुक्त नहीं हुई हैं।

जिला और अधीनस्थ अदालतों (लोअर जूडिशियरी) में महिलाओं की स्थिति थोड़ी बेहतर है। यहां महिला न्यायाधीशों की संख्या लगभग 35 प्रतिशत है। कुछ राज्यों में यह प्रतिशत बहुत कम है। जैसे गुजरात में 19.5 प्रतिशत, जबकि गोवा में सबसे ज्यादा 70 प्रतिशत महिलाएं न्यायाधीश हैं। अक्टूबर 2025 तक, देश की निचली अदालतों में कुल 7,852 महिला न्यायाधीश काम कर रही हैं। फिर भी, 17 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में यह अनुपात राष्ट्रीय औसत से कम है। भारत में कुल 17 लाख अधिवक्ता यानी लॉयर्स हैं, जिनमें केवल 15 प्रतिशत महिलाएं हैं। वहीं राज्य बार काउंसिलों में महिला प्रतिनिधियों की संख्या तो और भी कम है, जहां केवल 2 प्रतिशत चुनी हुई प्रतिनिधि महिलाएं हैं। ये आंकड़े दिखाते हैं कि भारत की न्यायपालिका में महिलाओं की भागीदारी बहुत कम है, जबकि समावेशी न्यायिक प्रक्रिया के लिए उनका प्रतिनिधित्व जरूरी है।

न्यायपालिका में महिलाओं के कम प्रतिनिधित्व के क्या प्रभाव हैं?

आलोचकों का मानना है कि जब किसी फैसले में लैंगिक दृष्टिकोण यानी जेंडर की समझ की कमी होती है, तो ऐसे फैसले पूर्वाग्रहों पर आधारित हो जाते हैं। यानी उनमें समाज में बनी रूढ़िवादी धारणाओं का असर दिखता है। उदाहरण के लिए, अगस्त 2020 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने एक व्यक्ति को, जिस पर यौन हिंसा का आरोप था, इस शर्त पर जमानत दी कि वह सर्वाइवर से राखी बंधवाएगा। यह फैसला दिखाता है कि अदालत ने अपराध को गंभीरता से नहीं लिया, बल्कि उसे एक 'भाई–बहन के रिश्ते' के प्रतीक के रूप में हल करने की कोशिश की। कई बार अदालतों के फैसलों में भारतीय महिलाओं की आदर्श छवि बनाए रखने की सोच झलकती है। जैसे कि जून 2020 में कर्नाटक उच्च न्यायालय ने एक बलात्कार के आरोपी को ज़मानत देते हुए कहा कि 'सर्वाइवर का व्यवहार वैसा नहीं था जैसा एक आदर्श बलात्कार सर्वाइवर का होना चाहिए।' न्यायालय की इस टिप्पणी से साफ दिखता है कि अदालत सर्वाइवर के आचरण को जज कर रही थी, न कि अपराध की गंभीरता को।

इसी तरह, अगस्त में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने एक ऐसी महिला को 'आदर्श भारतीय पत्नी' कहा, जिसने अपने पति के सालों से अलग हो जाने और उपेक्षा को चुपचाप सहन किया था। अदालत ने उसके इस त्याग की सराहना की, जबकि यह बात अपने आप में पितृसत्तात्मक सोच को दिखाती है। कई बार अदालतें बलात्कार के आरोपियों को सर्वाइवर से शादी करने की अनुमति भी दे देती हैं। यानी, उनके नजर में बलात्कार जैसे गंभीर अपराध का हल 'शादी' में है, न कि लैंगिक समानता, सजा और न्याय में। इन उदाहरणों से यह साफ दिखता है कि कई बार अदालतों के फैसले महिला की आदर्श छवि या उसकी 'गरिमा' तक सीमित रह जाते हैं, जबकि ध्यान अपराध की असली अपराधिक प्रकृति पर होना चाहिए। हालांकि ऐसा नहीं है कि सिर्फ महिला न्यायाधीश होने से ही कोर्ट के फैसलों में हम पितृसत्तात्मक और रूढ़िवादी दृष्टिकोण से दूर जा पाएंगे। लेकिन, महिलाओं की समान भागीदारी समावेशिता और समानता के रास्ते खोलने की उम्मीद देती है।

महिलाओं की संख्या क्यों जरूरी है?

जनवरी 2025 में जस्टिस सुनंदा भंडारे के स्मृति व्याख्यान में सुप्रीम कोर्ट की जस्टिस बी. वी. नागरत्ना ने एक प्रभावशाली भाषण दिया। उन्होंने कहा कि हमारे देश में न्यायपालिका में महिलाओं की भागीदारी बहुत जरूरी है और इस बदलाव से न्याय प्रक्रिया को बुनियादी रूप से बेहतर बनाया जा सकता है। न्यायमूर्ति नागरत्ना, जो 2027 में भारत की पहली महिला मुख्य न्यायाधीश बन सकती हैं, ने यह बात कही। उन्होंने यह तर्क दिया कि जब अदालतों में महिलाएं बैठती हैं, तो वे लैंगिक अधिकार, पारिवारिक कानून और यौन–हिंसा जैसे मामलों में एक अलग दृष्टि ला सकती हैं, जिससे न्यायाधीकरण की प्रक्रिया अधिक समृद्ध और संवेदनशील बनती है। इसके अलावा, उन्होंने कहा कि न्यायिक पटल पर महिलाओं की उपस्थिति कोर्ट की 'विश्वसनीयता और वैधता' के लिए महत्वपूर्ण है। उन्होंने यह भी बताया कि विविध अनुभवों–वाले न्यायाधीश बेहतर फैसले ले सकते हैं क्योंकि वे न्यायशास्त्र की सीमाओं को चुनौती दे सकते हैं और नए कानूनी विचार ला सकते हैं। असल में न्यायपालिका में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी केवल आंकड़ों का सवाल नहीं है। यह न्याय प्रक्रिया का राजकीय, संवैधानिक और सामाजिक मूल है।

कानूनी समझ में कमी और महिलाओं की न्याय तक पहुंच पर असर

अधिक विविधता यानी अलग–अलग पृष्ठभूमि के लोगों की मौजूदगी से न्याय व्यवस्था और भी संतुलित होती है। इससे ऐसे फैसले लिए जा सकते हैं जो जमीन की सच्चाई को बेहतर ढंग से दिखाते हैं। महिला न्यायाधीश अपने साथ ऐसे अनुभव और नजरिए लेकर आती हैं जो न्यायशास्त्र की सीमाओं को आगे बढ़ाते हैं। वे समान अवसर, यौन हिंसा और प्रजनन अधिकार जैसे मुद्दों पर नए और संवेदनशील कानूनी विचार पेश करती हैं। लेकिन जब न्यायपालिका में महिलाओं की संख्या कम होती है, तो ऐसे अहम मुद्दों पर कानून की प्रगति धीमी हो जाती है या कई बार अधूरी रह जाती है। जब न्यायपालिका में विविधता नहीं होती, तो कानून हर वर्ग के अनुभवों और मुश्किलों को पूरी तरह नहीं समझ पाता।

अगर अदालतों में महिलाओं का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं होगा, तो न्याय व्यवस्था महिलाओं और वंचित समुदायों की जरूरतों को सही तरह से पूरा नहीं कर पाएगी। न्यायाधीश सिर्फ कानून का पालन कराने वाला नहीं होता, बल्कि समाज में न्याय का चेहरा भी होता है। अगर देश की आधी आबादी यानी महिलाएं खुद को अदालतों में न्यायाधीश की कुर्सी पर शायद ही देखती हैं, तो उनके मन में न्याय प्रणाली पर भरोसा कम होता है। कई बार महिला सर्वाइवर, खासकर हाशिये के समुदायों की महिलाएं; महिला न्यायाधीश के सामने अपने अनुभव बताने में ज्यादा सहज महसूस करती हैं। लेकिन जब अदालतों में महिला न्यायाधीश कम होती हैं, तो महिलाएं संवेदनशील मामलों में कानूनी मदद लेने से झिझकती हैं। इसका सीधा असर न्याय की उपलब्धता पर पड़ता है।

न्यायपालिका में महिलाओं की भागीदारी क्यों जरूरी है?

महिलाओं की आबादी देश की लगभग आधी है, लेकिन न्यायालयों में उनका प्रतिनिधित्व बहुत कम है। इससे यह लगता है कि न्यायपालिका समाज के हर वर्ग की आवाज नहीं बन पा रही। अगर अदालतों में अधिक महिलाएं न्यायाधीश बनें, तो लोग न्यायपालिका को ज्यादा निष्पक्ष और भरोसेमंद मानेंगे। कई बार अदालतों के फैसलों में इस्तेमाल की जाने वाली भाषा पुरुष दृष्टिकोण से प्रभावित होती है। यह भाषा कई बार पितृसत्तात्मक सोच को दिखाती है, जिससे सर्वाइवर महिलाओं को नुकसान होता है। जैसे, नवम्बर 2024 में बॉम्बे हाईकोर्ट ने एक मामले में ससुराल वालों द्वारा की गई मौखिक हिंसा को 'हिंसा' नहीं माना। हालांकि घरेलू हिंसा कानून में मौखिक हिंसा को भी हिंसा का हिस्सा माना गया है। ऐसे मामलों में ये उम्मीद की जा सकती है कि महिला न्यायाधीश होने से शायद फैसला और उसकी भाषा दोनों अधिक संवेदनशील और न्यायपूर्ण होते। महिलाएं, खासकर पारिवारिक या वैवाहिक मामलों में, रिश्तों की जटिलता को बेहतर समझती हैं। महिला न्यायाधीश ऐसे मामलों में न सिर्फ कानूनी पक्ष को देखती हैं, बल्कि यह भी समझती हैं कि एक महिला किन भावनात्मक और सामाजिक दबावों से गुजरती है। इससे उनके फैसले अधिक मानवीय और संवेदनशील होते हैं।

न्यायपालिका सिर्फ कानून लागू करने वाली संस्था नहीं होती, यह समाज को दिशा भी देती है। जब अदालतों में महिलाएं न्यायाधीश के रूप में निर्णय लेती हैं, तो वे समाज में समानता और न्याय के नए मानक स्थापित करती हैं। उनकी उपस्थिति से महिलाओं और लड़कियों को यह संदेश मिलता है कि वे भी नेतृत्व की भूमिका निभा सकती हैं। उच्च पदों पर बैठी महिला न्यायाधीश समाज की उन लड़कियों के लिए प्रेरणा बन सकती हैं जो कानून या अन्य पेशों में करियर बनाना चाहती हैं। इससे समाज में यह धारणा टूटती है कि नेतृत्व या न्याय देने की क्षमता सिर्फ पुरुषों में होती है। जब अदालतों में महिलाओं की संख्या बढ़ेगी, तो न्यायपालिका अधिक स्वतंत्र, संवेदनशील और समाज का सच्चा प्रतिनिधि बनेगी। महिला न्यायाधीश अपने अनुभवों से यह सुनिश्चित कर सकती हैं कि न्याय सिर्फ कानून के दायरे तक सीमित न रहे, बल्कि उसमें इंसानियत और बराबरी की भावना भी हो।

फेमिनिजम इन इंडिया से साभार।

हर्ष गंगा इंटरप्राइजेज
निकट विकासखण्ड कार्यालय, धारी (नैनीताल)
सम्पर्क करें: 8859397921, 9758696499
हमारे यहां सभी प्रकार की फसलों के बीज, कृषि रक्षा रसायन, उर्वरक व कृषि यंत्र उचित मूल्य पर उपलब्ध हैं।

कानूनी अस्वीकरणः इस समाचार पत्र में प्रकाशित समाचारों, लेखों, जानकारियों, आंकड़ों एवं विचारों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं। स्वामी, मुद्रक और प्रकाशक की इन सभी से सहमति आवश्यक नहीं है। सभी विज्ञापन संबंधित विज्ञापन दाताओं द्वारा प्रदत्त हैं, किसी भी विज्ञापन पर विस्वास करने से पूर्व उत्पाद एवं सेवा की गुणवत्ता स्वयं जांच लें। विज्ञापन से हुई किसी भी प्रकार की हानि के लिए स्वामी, मुद्रक और प्रकाशक जिम्मेदार नहीं हैं।

पर्वतीय गांवों में जंगली जानवरों का आतंक

सुरेश भाई

उत्तराखण्ड के गांवों मे बाघ, तेंदुए और भालू के आतंक से लोग भयभीत है। जंगल और खेत में घास काटने जा रही महिलायें जंगली जानवरों का शिकार बन रही है। ऐसी ही दर्दनाक घटना नवम्बर के तीसरे सप्ताह में चमोली जिले के पाब गांव की है। जहां 42 वर्षीय रामेश्वरी देवी सुबह अपने जंगल में घास लेने गई थी लेकिन देर सांय तक जब वह समय पर अपने बच्चों के पास घर नहीं लौटी तो ग्रामीणों ने वन विभाग के साथ मिलकर सर्च अभियान चलाया। जंगल के रास्ते में उनकी घास काटने की दरांती और रस्सी भी बिखरी हुई मिली। लेकिन उनका कोई पता नहीं चला। ढूंढने गये लोगों को निराश होकर लौटना पड़ा। परिवार के लोग रात भर रोते रहे। अगले दिन सुबह फिर ढूंढने गये तो रामेश्वरी देवी एक बांज के पेड़ के पास भालू के हमले से घायल स्थिति में मिली। वह रात में कड़ाके की ठंड में जिंदगी और मौत से लड़ती रही। भालू के हमले से शरीर पर पड़े गहरे घाव से अंधेरे में बिलखती रही। भालू महिला को घायल कर भाग गया था। इसके बावजूद भी उसने जिंदा रहने की आस बांधे रखी। चमोली जिले में वन्यजीवों के हमले में इस वर्ष लगभग 25 लोग घायल हुए जिसमें 12 हमले भालू ने किये हैं। यहां ज्योर्तिमठ, दसौली, पोखरी, देवाल, थराली, कर्णप्रयाग, नंदा नगर क्षेत्र में भी भालू सक्रिय है। जहां कुछ महीने पहले बाढ़ से भी जन–धन की बहुत हानि हुई थी। बाघ और तेंदुए का आतंक पौड़ी जिले में सबसे अधिक है यहां निहालगढ़ और कोटी के पास गिन्नी देवी नाम की एक महिला घर से लगभग 300 मीटर दूर खेतों में घास काटने गई थी। तभी झाड़ियों में छिपे तेंदुए ने उन पर हमला बोल दिया। जिसकी मौके पर ही मौत हो गई। यहीं पर 50 वर्षीय प्रकाश चंद्र का शव एक सप्ताह बाद जंगल से बरामद हुआ। पोखडा ब्लॉक के बगड़ी गाड़ गांव में भी एक महिला को तेंदुए ने निवाला बनाया था और इसके दो दिन पहले घंडियाल गांव में एक अन्य महिला को भी तेंदुए ने घायल कर दिया था।

17 नवम्बर को जिवई गांव में भी एक महिला पर भालू ने हमला किया जिससे उसके चेहरे पर गंभीर चोटें आई है। सन् 1991 में तेंदुए के हमले से तीन महिलाओं की जान बचाने वाले रुद्रप्रयाग जिले के भरत सिंह चौधरी को भी भालू ने हमला कर जख्मी किया हैं। उत्तरकाशी में भी अब तक भालू ने 14 हमले किये हैं।

आंकड़े बताते हैं कि वर्ष 2025 में अब तक 40 लोगों की जीवनलीला को जंगली जानवरों ने समाप्त कर दिया है। जबकि जानवरों का आतंक अभी जारी है। उत्तराखण्ड में पिथौरागढ़, पौड़ी गढ़वाल, रुद्रप्रयाग, बागेश्वर, हरिद्वार, रामनगर, हल्द्वानी, टिहरी, उत्तरकाशी आदि स्थानों पर लगभग 500 से अधिक गांवों में जंगली जानवर खेत, खलियान, रास्ते और घरों की देहली तक पहुंचकर आतंक मचा रहे हैं। कॉर्बेट टाईगर रिजर्व, गोविंद वन्य जीव पार्क, राजाजी नेशनल पार्क जैसे अनेक जीव–जंतु और जैव विविधता के लिए संरक्षित अभ्यारण्यों के निकट के गांव में लोग सबसे अधिक दहशत में जी रहे हैं। यहां पर रहने वाले लोगों का आरोप है कि बाहर से मनुष्यों का शिकार करने वाले जानवर बड़ी मात्रा में उनके निकट छोड़े जा रहे हैं। भले ही इसकी कोई आधिकारिक जानकारी नहीं है। लेकिन जंगली जानवरों पर नियंत्रण भी नहीं है। जब कहीं भी वन्य जीव और मनुष्यों के बीच संघर्ष के भयानक दृश्य सामने आते हैं तभी वन विभाग और संबंधित वन्य जीव विभाग हरकत में आता हैं और वे लोगों को कहते हैं कि स्वयं सावधान और सुरक्षित रहें। और जंगल में न जाने की सलाह देते हैं। लेकिन जंगली जानवरों पर नियंत्रण करने के लिए क्या व्यवस्था है? इस विषय पर स्पष्ट रूप से कोई प्लानिंग नहीं दिखाई देती है। जंगली जानवरों के लिए संवेदनशील गांव में सबसे अधिक खतरा बाघ और तेंदुए से ही है। महिलाओं को दिन में खेतों में काम करना और जंगल से घास–लकड़ी लाना बहुत ही जोखिम भरा हो गया है। गांवों में तेंदुए लगातार दिखाई देने से स्कूल जाने वाले बच्चे भय के माहौल में हैं। दर्जनों स्कूलों में बार–बार छुट्टी करनी पड़ रही हैं और गांव से दूर बने स्कूलों को पंचायत घरों में शिफ्ट करना पड़ रहा है। इससे घास काटने वाली महिलाओं के जीवन को खतरा है। साथ ही बच्चों की प्राइमारी शिक्षा प्रभावित हो रही है। दूर–दराज में रहने वाले गांव जहां अभी सड़क सुविधा नहीं पहुंच सकी है। वहां तक अपने घरों में लौटने वाले लोगों को भी जंगली जानवरों का डर बना हुआ है।

मुख्यमंत्री पुष्कर सिंह धामी ने प्रमुख वन संरक्षक समीर सिंन्हा की उपस्थिति में 50 लाख रुपये वन्यजीवों के हमलों को रोकने हेतु जारी किया है और कैबिनेट की बैठक में जान गंवा रहे लोगों को मुआवजे के रूप में 10 लाख रुपए की सहायता की घोषणा की है। जिससे तात्कालिक राहत तो मिल सकती है, लेकिन लंबे समय तक वन्यजीवों के हमले से बचने के लिए कुछ महत्वपूर्ण उपाय की आवश्यकता है। जिसमें कहा जा रहा है कि वन विभाग को गांव की उन महिलाओं की सुरक्षा के लिए "वन पुलिस" का गठन करना चाहिए, जिनके संरक्षण में महिलाएं जंगल में घास काट कर सुरक्षित घर आ सकती है। इसके साथ ही पंचायत और वन पुलिस को बाघ से निपटने का स्वतंत्र अधिकार मिलना चाहिए। भारतीय वन्य जीव संरक्षण अधिनियम 1972 के अनुसार कोई जंगली जानवर मानवीय जीवन के लिए खतरा बनता है या लगातार नुकसान पहुंचा रहा है तो मुख्य वन्यजीव वार्डन उसे मारने, पकडने और नियंत्रित करने का आदेश दे सकता है। अतः कानून भी इंसानी सुरक्षा को सर्वोपरि मानता है। जंगल के रास्ते पर उगने वाली झाड़ियों को भी समय–समय पर मनरेगा के माध्यम साफ किया जा सकता है। स्थाई उपायों पर ध्यान देने के लिए प्रभावित गांवों के लोगों के साथ मिलकर भी रणनीतिक फैसले लेने होंगे।

लेखक सामाजिक कार्यकर्ता और पर्यावरणविद हैं।

'बात पहाड़ की' ई-पेपर पढ़ने के लिए इस QR कोड को स्कैन करें।

अलग पार्वतीय राज्य के लिए हम 1897 से लड़ते रहे

प्रमोद शाह

नैनीताल। सन् 1857 में ईस्ट इंडिया कंपनी से भारत का शासन ब्रिटिश क्रॉउन में निहित होने के बाद, अंग्रेजों ने केंद्रीकृत व्यवस्था को प्रशासनिक एवं जन विद्रोह को विभाजित करने की नियत से ही प्रांतों का गठन प्रारंभ किया। संयुक्त प्रांत, मध्य प्रांत, विदर्भ ऐसे ही प्रांत थे। लेकिन भारत के अधिकांश हिस्से का नियंत्रण तब भी प्रिंसली स्टेट के जरिए जारी था। बंगाल और उड़ीसा क्षेत्र में सांस्कृतिक और भाषाई आधार पर विरोध देखा गया, तो 1896 में बंगाल के बड़े हिस्से से बिहार, उड़ीसा और मध्य प्रांत में आदिवासी क्षेत्रों को अलग–अलग राज्यों में बांट दिया गया, तांकि उनके संगठित होने की संभावनाएं कम हो जाएं।

पर्वतीय राज्यों के संबंध में अंग्रेज सीधे राज करने की नीति से बचना चाहते थे। जिसके तहत उन्होंने कश्मीर तथा हिमाचल प्रदेश तथा टिहरी गढ़वाल में प्रिंसली स्टेट के जरिए शासन जारी रखा। यह ऐतिहासिक संयोग था कि वर्ष 1815 के साल ही कश्मीर, हिमाचल और उत्तराखण्ड में अंग्रेजों को इन पर्वतीय क्षेत्रों में राज्य करने का अवसर प्राप्त हुआ, लेकिन ब्रिटिशगढ़वाल व कुमायूं को छोड़कर अंग्रेजों ने शेष पर्वतीय भाग को रियासत के जरिए ही अपने नियंत्रण में रखा, ब्रिटिश गढ़वाल जिसे प्रारंभ में कुमायूं कहा गया, संयुक्त प्रांत के प्रशासनिक नियंत्रण में आया। संयुक्त प्रांत जिसे 1936 के बाद उत्तर प्रदेश कहां गया, में प्रारंभ से ही इस पर्वतीय प्रदेश ने खुद को असहज महसूस किया। हालांकि कुमायूं का प्रशासनिक नियंत्रण रैमजे के समय 1855 से 1885 तक एक अलग राज्य के रूप में ही रहा, कालांतर में संयुक्त प्रांत का हस्तक्षेप यहां बढ़ता गया।

बढ़ते हस्तक्षेप के कारण सबसे पहले 1897 में अल्मोड़ा के श्री हरिदत्त पांडे, ज्वाला दत्त जोशी, बद्री दत्त जोशी व श्री गोपाल दत्त आदि ने रानी विक्टोरिया को पत्र लिखकर भौगोलिक और सांस्कृतिक भिन्नता के आधार पर अलग पर्वतीय राज्य की मांग कर डाली।

इस प्रकार 1897 अलग पर्वतीय राज्य की मांग का शुरुआती साल है। सन् 1920 के कुली बेगार और बाद के दिनों में वन आंदोलनों में जिस प्रकार एक अलग क्षेत्र के रूप में उत्तराखण्ड ने अपनी पहचान बनाई थी। जिसे 1930 में महात्मा गांधी ने अपने कुमाऊं प्रवास में अलग ही रेखांकित किया था। फिर 1938 में जब जवाहर लाल नेहरू अपने गढ़वाल के भ्रमण में आए तो उन्होंने भी सैद्धांतिक रूप से उत्तराखण्ड को एक अलग भौगोलिक और सांस्कृतिक क्षेत्र होने के आधार पर इस क्षेत्र के स्वयं निर्णय लेने के अधिकार को मान्यता दी। जिसके आधार पर 1940 में बद्री दत्त पांडे द्वारा विशेष पर्वतीय क्षेत्र की मांग कांग्रेस के हल्द्वानी सम्मेलन में रखी।

संयुक्त प्रांत और बाद में उत्तर प्रदेश की विधानसभा में उत्तराखण्ड के निवासियों का राजनीतिक कद बहुत बड़ा हो गया, जिस कारण अलग प्रशासनिक इकाई की मांग पीछे छूटते गई। इस छोटे पर्वतीय क्षेत्र के गोविंद बल्लभ पंत, बैरिस्टर मुकंदी राम और बद्री दत्त पांडे ने संयुक्त प्रांत में अपनी अलग पहचान बना ली। संयुक्त प्रांत में साइमन कमीशन के विरोध का पूरा आंदोलन इन तीनों उत्तराखण्डी नौजवानों के सिर पर आ टिका था। उत्तराखण्ड के प्रतिनिधियों का राजनीतिक कद बढ़ने के साथ राज्य की मांग पिछड़ती गई।

आजाद भारत में भी उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्र में प्रशासनिक अव्यवस्था महसूस की जाने लगी थी। जिसे रेखांकित करते हुए कम्युनिस्ट पार्टी के पूर्व महासचिव कामरेड पीसी जोशी ने 1952 में उत्तराखण्ड के अलग केंद्र शासित राज्य के रूप में गठन किए जाने की मांग की। लेकिन तब तक कामरेड पी.सी. जोशी अपना राजनीतिक प्रभाव खो चुके थे। लेकिन 1956 में जब राज्य पुनर्गठन आयोग की रिपोर्ट आई तो विद्वान के. एम. पाणिकर ने भौगोलिक सांस्कृतिक और भाषाई आधार पर जो कि राज्य गठन के मुख्य आधार माने गए थे, के आधार पर उत्तराखण्ड को अलग पर्वतीय राज्य बनाए जाने की प्रबल संस्तुति की थी।

लेकिन उत्ताराखण्ड के राजनीतिक प्रतिनिधियों का मजबूत कद अलग उत्तराखण्ड राज्य बनाने के आड़े आया। जब गोविंद बल्लभ पंत द्वारा एक अलग राज्य के रूप में उत्तराखण्ड के संसाधनों का पर्याप्त ना होना कहकर अलग राज्य गठन किए जाने का प्रबल विरोध किया। इस प्रकार राज्य गठन का एक संवैधानिक अवसर उत्तराखण्ड के हाथ से निकल गया।

लेकिन विकास में भौगोलिक आधार पर पिछड़ने के कारण 1970 में प्रधीनमंत्री इंदिरा गांधी द्वारा क्षेत्र के विकास के लिए अलग व्यवस्था किए जाने की बात की। जिसके आधार पर ही उत्तर प्रदेश में उत्तराखण्ड के लिए अलग "पर्वतीय–विकास मंत्रालय" का गठन किया गया। इस अलग मंत्रालय ने वर्षो तक उत्तराखण्ड राज्य की विशेष परिस्थितियों को लगातार रेखांकित किया, लेकिन जमीनी असंतोष और अलग राज्य की मांग अंदर–अंदर अपना स्वरूप ले रही थी।

सन् 1971 में महाराजा मानवेन्द्र शाह, इन्द्रमणी बडोनी, नरेन्द्र सिंह, लक्षमण सिंह आदि ने अलग राज्य की मांग को लेकर दिल्ली में प्रदर्शन किया जिस पर उनकी गिरफ्तारी हुई। 24 अगस्त 1972 को ऋषि वल्लभ सुंदरियाल, पूरन सिंह आदि उत्तराखण्ड के आंदोलनकारियों ने बोट हाउस क्लब पर प्रदर्शन किया। यहां 21 आन्दोलन कारियो की गिरफ्तारी हुई, इसके तुरंत बाद उत्तर प्रदेश में पहले हेमंती नंदन बहुगुणा और उसके बाद नारायण दत्त तिवारी मुख्यमंत्री हुए। जिस कारण अलग पर्वतीय राज्य का नैतिक बल कमजोर हुआ ।

उत्तराखण्ड क्रांति दल का गठन 1979 और आगे के राज्य गठन के संघर्ष को हम जानते हैं। देश में उत्तराखण्ड ही वह अलग राज्य है, जिसने अपने निर्माण के लिए सदियों तक संघर्ष किया और अंतिम चरण में 42 शहादत देकर इस राज्य को प्राप्त किया।

इस वर्ष हम राज्य स्थापना दिवस के 25 वर्ष पूरे करने जा रहे हैं। उपलब्धियां और दुश्वारियां दोनों ही हमारे हिस्से हैं।

लेकिन इस ऐतिहासिक गर्व के क्षण में हमें अपने राज्य गठन के लंबे संघर्ष को, राज्य के उपेक्षित भूगोल और नागरिकों को जिनके कारण राज्य की अवधारणा ने जन्म लिया, उसे फिर से अपने मस्तिष्क में रखकर समग्र उत्तराखण्ड के सर्वांगीण विकास का विशेषज्ञ मत प्राप्त कर डाटा बेस आधारित एक रोडमेप तैयार करना ही होगा।

बात पहाड़ की
सम्पादकः पंकज सिंह बिष्ट
स्वामी, मुद्रक एवं प्रकाशक पंकज सिंह बिष्ट द्वारा भीड़ापानी ओखलकांडा प्रिंटिंग प्रेस, निकट कालाढूंगी चौराहा, भोलानाथ गार्डन, हल्द्वानी, जिला नैनीताल (उत्तराखण्ड) से मुद्रित एवं म.नं. 14 ग्राम गजार, पोस्ट ऑफिस कसियालेख, ब्लॉक व तहसील धारी, जिला नैनीताल, उत्तराखण्ड, पिन 263137 से प्रकाशित।
Mobile: +91 9410126343
Email: info@baatpahaadki.com
Website: news.baatpahaadki.com
RNI No.: UTTHIN/2021/83295
इस अंक में समाचारों के चयन एवं सम्पादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी।
समस्त वादों का निस्तारण धारी न्यायालय के अधीन होगा।